मुखपृष्ठ
साहित्यकारों की वेबपत्रिका
साहित्यसुधा
वर्ष: 5, अंक 95,अक्तूबर(द्वितीय), 2020

# वक़्त है फूलों की सेज, वक़्त है काँटों का ताज

## (प्रबोध कुमार गोविल की किताब 'ज़बाने यार मनतुर्की' की समीक्षा)

- प्रवीण प्रणव

पुस्तक : ज़बाने यार मनतुर्की
लेखक : प्रबोध कुमार गोविल
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन
ISBN: 978-81-947232-6-4
पृष्ठ संख्या : 143
समीक्षक : प्रवीण प्रणव

बोधि प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित प्रबोध कुमार गोविल की किताब 'ज़बाने यार मनतुर्की' हाल में ही पढ़ने को मिली। बोधि प्रकाशन ने जिस तरह के किताबों के प्रकाशन का जिम्मा उठाया है, किताबों के स्तर का जिस तरह ध्यान रखा है और किताबें लेखकों को नहीं बल्कि पाठकों को ध्यान में रख कर पाठकों की रुचि और विषय के अनुरूप उचित मूल्य पर किताबें प्रकाशित की हैं, इनसे बोधि प्रकाशन का नाम शीर्ष के प्रकाशकों में शुमार हो गया है और इस यात्रा के पीछे माया मृग की अथक मेहनत है जो साहित्य प्रेमियों की नजर से छुपी नहीं है। 'ज़बाने यार मनतुर्की' हाथ में लेते ही सबसे पहले जिन बातों ने ध्यान आकृष्ट किया वह था किताब का शीर्षक, आवरण चित्र, किताब के पन्ने और छपाई का स्तर। मेरे लिए किताब को पढ़ने से पहले किताब का पसंद आना बहुत जरूरी है। कई बार ऐसा हुआ है कि बेहतर किताब एक ऐसे कलेवर में सामने आई कि पढ़ने का उत्साह ही जाता रहा। यह उसी तरह है जैसे किसी से प्रेम में पड़ने से पहले उस प्रेम का अनुभव अपने अंदर करना। बोधि प्रकाशन की लगभग सभी किताबें इस पैमाने पर खरी उतरती हैं और यह किताब भी अपवाद नहीं है। एक बात जिस की कमी लगी, कि इस किताब के बारे में कुछ नहीं लिखा है। अमूमन पाठक किताब पढ़ने से पहले जानना चाहता है कि किताब की विषय-वस्तु क्या है? किताब के पिछले कवर पेज पर किताब की विषय वस्तु के बारे में लिखा जा सकता था। इस किताब में न लेखकीय वक्तव्य है और न ही भूमिका, इस वजह से भी किताब के बारे में जानने में मुश्किल होती है। विषय सूची के बाद किताब सीधे पहले अध्याय से शुरू होती है और यदि पाठक ने यह अध्याय पढ़ लिया तो फिर प्रबोध कुमार गोविल के लेखन की शैली और विषय की रोचकता आपको अपने आगोश में कस लेते हैं और किताब खत्म होने से पहले इसे वापस रखना मुश्किल हो जाता है। पहले अध्याय में ही पाठक को यह भी महसूस हो जाता है कि किताब अपने जमाने की मशहूर अदाकारा साधना के जीवन के बारे में है। एक और बात जो इस किताब के विषय में जोड़ना चाहूँगा कि किसी जादूगर की सफलता इस बात में है कि लोग जादू देखकर वाह-वाह करने पर मजबूर तो हों ही लेकिन साथ ही उनके मन में यह जानने की उत्कंठा भी हो कि आखिर जादूगर ने इसे किया कैसे? और जादूगर के लिए जरूरी है कि यह राज जाहिर न हो और तिलस्म बना रहे। साहित्य में इसके उलट जब कोई साहित्यकार कोई ऐसी (सत्य घटना पर आधारित) बात प्रस्तुत करता है जिसे पढ़ कर पाठक प्रसन्न हो उठे और तब उसका पहला सवाल

होता है कि लेखक ने जो लिखा है उसका श्रोत क्या है? लेखक के लिए जरूरी है कि वह पाठकों को बताए कि उसने जो लिखा वह उसके खुद के अनुभव हैं, किसी से बातचीत पर आधारित है या किसी अन्य माध्यम पर। प्रबोध कुमार गोविल की इस महत्वपूर्ण किताब जिसमें वह साधना के बारे में कई रोचक जानकारियाँ पाठकों के लिए उपलब्ध करवाते हैं, में इस जानकारी का न होना कि उन्हें इन बातों की जानकारी कैसे हुई, खटकता है। यदि इस किताब में उन्होंने भूमिका लिखी होती तो शायद इस सवाल का जबाव अवश्य मिलता।

साधना को उस दौर में 'मिस्ट्री गर्ल' कहा गया जिसके कई कारण रहे। 1962 में एक फिल्म आई थी 'एक मुसाफिर एक हसीना'। फिल्म में जॉय मुखर्जी और साधना थे। अमीर खुसरो ने फारसी में लिखा '*ज़ुबान-ए-यार मन तुर्की, व मन तुर्की नमी दानम*', खुसरो की इसी पंक्ति को इस फिल्म में शेवन रिजवी ने गाना लिखते हुए लिया। मोहम्मद रफ़ी और आशा भोसले की मखमली आवाज़ का जादू और ओ. पी. नय्यर  का संगीत ऐसा था कि लोग इन पंक्तियों का मतलब न जानते हुए भी उसे गुनगुनाने लगे। कुछ लोगों की जिज्ञासा भी हुई कि आखिर 'ज़ुबान-ए-यार मन तुर्की, व मन तुर्की नमी दानम' का मतलब क्या है? मुझे यकीन है इस किताब को पढ़ने वाले कई पाठकों के मन में भी यह सवाल होगा। खुसरो ने इस पंक्ति में लिखा कि प्रेमी और प्रेमिका भाषागत दूरियों की वजह से एक दूसरे से बात नहीं कर पा रहे है। प्रेमी कहता है मेरे यार की ज़बान तुर्की है जो मुझे नहीं आती, काश मेरे मुंह में भी उसकी ही ज़बान होती। साधना का व्यक्तित्व भी ऐसा रहा कि वह अपने काम में ज्यादा मशगूल रहीं और उस समय के पार्टी कल्चर से दूर रहीं। यही कारण रहा कि संवाद के स्तर पर कुछ दूरियाँ उनके समकालीनों से बनी रही। ऐसे में साधना की जिंदगी पर लिखे गए इस किताब का शीर्षक  'ज़बाने यार मनतुर्की' सर्वथा उचित प्रतीत होता है।

लेखक ने इस किताब में साधना के बचपन से ले कर उनके फिल्मों में आने तक के सफर, फिल्मों में उनके स्टारडम का दौर, उनकी बीमारी और फिर फिल्मों में वापस सफल होने की जद्दोजहद, और फिर हकीकत को आत्मसात कर फिल्मों से दूरी और अंततः दुनिया से दूरी की घटनाओं का प्रभावी चित्रण किया है। किताब में किसी बेहद सफल काल्पनिक उपन्यास के जैसी रोचकता है जिसके लिए लेखक की लेखन शैली और साधना के जीवन में आए कई नाटकीय उतार-चढ़ाव बराबर के हिस्सेदार हैं।  अपना बसा-बसाया घर छोड़ कर किसी अजनबी जगह अपने हिस्से की मिट्टी और आसमान ढूँढना आसान नहीं होता। अंजली के माँ-बाप भारत-पाकिस्तान के बंटवारे के समय कराची से हिंदुस्तान आए और कई जगहों की खाक छानने के बाद मुंबई रहने का निर्णय लिया। अंजली के चाचा पहले से ही मुंबई में थे और फिल्मों में छोटे-मोटे किरदार निभा रहे थे। शायद मुंबई आने के पीछे फिल्मों में काम करने का सपना भी शामिल रहा हो। अंजली के पिता बांग्ला अभिनेत्री साधोना बोस से बहुत प्रभावित थे, इसलिए स्कूल में उन्होंने अंजली का नाम साधोना लिखवाया लेकिन अंजली ने अपने आप को साधना कहना शुरू कर दिया। स्कूल की पढ़ाई के दौरान ही एक घटना हुई। एक फिल्म के कोरस गाने को फिल्माने के लिए कुछ लड़कियां चाहिए थीं। फिल्म से जुड़े लोग साधना के स्कूल आए और गोरी, खूबसूरत, लंबी साधना का भी चयन उस गाने के लिए हो गया। गाना था "मुड़ मुड़ के न देख, मुड़ मुड़ के", फिल्म थी राज कपूर की 'श्री चार सौ बीस' और यूं हुआ साधना का फिल्मों में पदार्पण। कॉलेज में जाते ही साधना ने एक सिन्धी फिल्म 'अबाना' में अभिनेत्री की छोटी बहन का किरदार निभाया। फिल्म सफल रही और इसी फिल्म की वजह से वह फिल्मालय स्टूडियो के मालिक की नज़र में आईं जिन्होंने साधना को अपने फिल्म निर्माण कंपनी के लिए साइन कर लिया। साधना की आरंभिक तीन फिल्में 'लव इन शिमला', 'परख'  और 'प्रेमपत्र' सफल रहीं और साधना का नाम बुलंदियों पर पहुँच गया।

साधना के फिल्मी सफर को फिल्म-दर-फिल्म लेखक ने बहुत ही खूबसूरती के साथ लिखा है। कभी मात्र कुछ सौ रुपये मासिक से फिल्मी सफर की शुरुआत करने वाली साधना देखते-देखते सबसे ज्यादा पैसे लेने वाली अभिनेत्री बन चुकी थीं। उस दौर में साधना ने जो कुछ भी किया वह फ़ैशन स्टेटमेंट बन गया। उनके चौड़े माथे को ढकने के लिए उनके बाल माथे पर लाए गए तो यह साधना कट के नाम से भारत भर में मशहूर हो गया। उन्होंने चूड़ीदार पायजामा पहना तो वह भी लड़के-लड़कियों सभी का पसंदीदा बन गया। साधना की लंबाई अच्छी थी इसलिए फिल्मों के हीरो उन्हें हील वाली चप्पल पहनने से मना करते थे। साधना के एक पैर की एक उंगली दूसरे पर चढ़ी हुई थी। चप्पल पहनने पर यह दिखता था जो साधना नहीं चाहती थीं। ऐसे में उन्होंने जूती पहनने का चलन शुरू किया और यह भी लड़के-लड़कियों दोनों के लिए फ़ैशन बन गया।

साधना लंबे समय तक अपने फिल्मी कैरियर में शीर्ष पर काबिज रहीं, उनकी फिल्में एक से बढ़ कर एक सफल होती रहीं लेकिन उन्हें कभी कोई बड़ा पुरस्कार नहीं मिला। शायद इसकी वजह उनका सिर्फ अपने काम से काम रखना और फिल्मी पार्टियों से दूरी बनाए रखना भी रहा हो। साधना ने 16 वर्ष की आयु में काम करना शुरू किया। प्यार एक ऐसी चीज है जो उम्र के साथ हो ही जाती है। साधना की पहली फिल्म के निदेशक आर. के. नय्यर, साधना को चाहने लगे लेकिन साधना के सामने घर चलाने की जिम्मेदारी थी। आर. के. नय्यर ने लंबे समय तक इंतजार किया और जब साधना अपने शीर्ष पर थीं तो उन्होंने आर. के. नय्यर से शादी कर ली। फिल्म जगत में आम तौर पर हीरो-हीरोइन के बीच रोमांस की खबरें आती ही रहती हैं लेकिन साधना इसकी अपवाद रहीं, उनका नाम कभी किसी के साथ नहीं जुड़ा।

लेखक ने इस किताब में साधना की जीवनी के बहाने आज भी फिल्मों में जो राजनीति हो रही है उस पर प्रहार किया है। पुरस्कार  बांटने में हो रही राजनीति पर लेखक ने विस्तार से लिखा है कि कैसे साल की बड़ी-बड़ी हिट देने के बाद भी साधना को पुरस्कार  नहीं दिया गया। आज भी इस तरह की आवाजें सुनाई देती रहती हैं। आज फिल्मों में नशे पर बड़ी चर्चा हो रही है लेकिन साधना की एक फिल्म में जब उन्होंने शराब पीते हुए एक गाना गाया था तब सेंसर बोर्ड ने इस पर आपत्ति जताई थी। गाने के बाद फिल्म में साधना को एक संवाद जोड़ना पड़ा कि मैं तो शराब पीने का नाटक कर रही थी, असल में वह कोला था और तब जा कर सेंसर बोर्ड ने उसे पास किया। जबकि कड़वी हकीकत थी कि उस समय हीरोइनों का पार्टी में शराब पीना आम बात थी। मीना  कुमारी का करियर शराब की ही भेंट चढ़ गया।

स्त्री सशक्तिकरण की बात करते हुए लेखक ने कपूर खानदान के दोहरे मानदंड पर प्रश्न चिन्ह लगाया है। अपनी फिल्मों के लिए नायक तो हमेशा कपूर खानदान से ही लिए जाते थे लेकिन नायिकाओं को कई तरह के टेस्ट से गुजरना पड़ता था। अपनी काबिलीयत साबित करने के बाद नायिकाओं को काम मिला लेकिन यही कपूर खानदान अपने बेटी-बहू के लिए फिल्मों के दरवाजे बंद रखता था। बबीता, साधना के चाचा की बेटी थी। सात साल छोटी बबीता ने भी फिल्मों में काम करने का सपना देखा। फिल्मों में पदार्पण से पहले ही राज कपूर के बेटे रणधीर कपूर से उनकी नजदीकियाँ बढ़ने लगीं। राज कपूर को  जब यह खबर लगी तो उन्होंने साधना से बात की और स्पष्ट कहा कि बबीता को फिल्म या कपूर खानदान में से एक को चुनना होगा। साधना और बबीता के रिश्ते कभी मधुर नहीं रहे, इस विषय पर साधना ने जब बबीता से बात करनी चाही तो रिश्ते ऐसे बिगड़े कि ताउम्र नहीं ठीक हुए। बबीता बगावत करते हुए फिल्मों में आ गईं और बतौर अभिनेत्री उनकी कई फिल्में सफल रहीं। लेकिन कपूर खानदान के इस नियम के आगे बबीता को हार माननी पड़ी और रणधीर कपूर से शादी करने के बाद उन्होंने

फिल्मों को अलविदा कह दिया। हालांकि इस टीस को वह भूली नहीं और अपनी बेटियों करिश्मा और करीना कपूर को फिल्मों में ला कर कपूर खानदान के इस रिवाज को तिलांजलि दे दी।

परिवारवाद या नेपोटिज्म की चर्चा भी आजकल जोरों पर है। लेखक ने लिखा है कि जहां साधना ने अपना दौर खत्म होने के बाद फिल्मों से विदाई ले ली, वहीं उनकी समकालीन अभिनेत्रियाँ माँ और भाभी के किरदार निभा रही थीं। इसके पीछे अपनी संतानों को फिल्मों में लॉन्च करने के बाद ही फिल्मों से विदाई लेने की भावना प्रबल थी।

बात यदि साधना की करें तो वक्त का पहिया घूमा और जब साधना शीर्ष पर थीं तभी उन्हें थायराइड बीमारी हो गई। साधना इलाज के लिए अमेरिका गईं जहां लंबे समय तक उनका इलाज चला। इस बीच नई अभिनेत्रियों की खेप फिल्मों में आ चुकी थीं। इलाज के बाद साधना ठीक हो कर वापस आ गईं लेकिन बीमारी की वजह से उनके चेहरे और उनकी आँखों पर फर्क पड़ा। वक्त विपरीत हो जाय तो कुछ भी ठीक नहीं होता। साधना की एक के बाद एक फिल्में असफल होती चली गई। नय्यर का निदेशक का काम भी बंद हो गया। आर्थिक परेशानी होनी शुरू हो गई और लाख प्रयास के बाद जब साधना की कोई फिल्म नहीं चली तो उन्होंने फिल्मों को अलविदा कहने का फैसला कर लिया। जहां साधना की समकालीन अभिनेत्रियों ने अपने उम्र के मुताबिक किरदार करना शुरू कर दिया, साधना का फैसला था कि वह अपने चाहने वालों की नज़र में वही साधना बन कर रहेंगी जिसे उन्होंने चाहा, प्यार दिया। इस निर्णय पर साधना इतनी डटी रहीं कि फिल्मों से दूर होने के बाद, किसी भी सामाजिक समारोह से उन्होंने दूरी बनाए रखी ताकि उनकी कोई तस्वीर कहीं न छपे। अपने किसी मिलने वाले के साथ उन्होंने कोई तस्वीर नहीं खिंचवाई। इसके कुछ अपवाद रहे लेकिन ज्यादा नहीं।

फिल्मों से दूर तो हो ही गई थीं, आर्थिक तंगी भी थी ऐसे में एक खुशी जो साधना की जिंदगी में आई कि वह माँ बनने वाली थीं। लेकिन ईश्वर उनसे बिल्कुल ही विपरीत हो गया था और यह खुशी भी उन्हें नहीं मिलनी थी। 9 महीने गर्भ में बच्चे को पालने के बाद जब उसका जन्म हुआ तो बच्चा मृत पैदा हुआ। साथ ही डॉक्टर ने कह दिया कि थायराइड बीमारी की वजह से शरीर पर जो असर हुआ है उसकी वजह से अब वह कभी माँ नहीं बन पाएंगी। साधना के लिए अब कोई खुशी बची नहीं थी। नय्यर साहब के साथ दुनिया घूमने निकल पड़ीं लेकिन इससे दुख खत्म होने वाला नहीं था। साधना हर दिन अंदर-ही-अंदर टूटती रहीं और 1995 में जब नय्यर साहब नहीं रहे तो साधना का आखिरी सहारा भी जाता रहा। अपनी नौकरानी की बेटी को उन्होंने अपनी बेटी की तरह माना और उसके पढ़ने-लिखने का सारा खर्च उठाया, हालांकि कानूनी तौर पर उन्होंने गोद नहीं लिया। साधना के आखिरी के दिन बहुत तन्हा बीते, खुद को जमाने के सामने न आने देने का उनका फैसला भी इसका कारण रहा। अपने कुछ दोस्तों के साथ बैठना और ताश खेलना ही उनका शौक रहा। मुंबई से दूर लेह भी कुछ दिनों के लिए चली गईं लेकिन वहाँ पहचान ली गईं और फिर वापस मुंबई आ गईं। लेखक ने जिस खूबसूरती से उनके परवान चढ़ते सफलता को लिखा है, उतना ही दर्द उनके ढलान और एकाकीपन में है। उनकी जीवनी को पढ़ना जैसे ई.सी.जी. रिपोर्ट में ऊपर नीचे जाती रेखाओं को पढ़ना है। 2015 में डॉक्टर ने कहा कि थायराइड की वजह से उनके मुंह पर असर हुआ है और यदि जल्द ऑपरेशन न किया गया तो कैंसर का खतरा है। इस समय साधना अपने एकाकीपन से, अपने बिगड़ते स्वास्थ्य से और अपने घर से जुड़े कुछ कानूनी झमेले से भी जूझ रही थीं और इन सब के बीच उनका कोई अपने पास नहीं था। चचेरी बहन बबीता बड़े घर की साधन-संपन्न बहू थीं लेकिन ऐसे वक्त में भी उन्होंने मन में खटास जारी रखा और देखने तक नहीं आईं। साधना का ऑपरेशन हुआ लेकिन इसके बाद भी उनकी तबीयत बिगड़ती ही गई और अंततः 25 दिसम्बर 2015 को अपने जमाने की उस अभिनेत्री ने जिसकी एक

झलक पाने को लाखों लोग उमड़ पड़ते थे, खामोशी और तनहाई में दुनिया को अलविदा कह दिया। साधना को हमेशा मृत्यु से डर लगा रहा, वह किसी के भी मरने पर परिवार से मिलने नहीं जाती थीं। मृत्यु के दो-तीन दिन बाद जा कर परिवार से मिल आतीं। लेकिन जिस डर से वह हमेशा दूर रहीं, एक दिन उसी डर ने उन्हें इस दुनिया से मुक्ति दे दी और शायद वह अवसर दे दिया कि एक बार फिर वह अपने सारे दुख भूल, ऊपर अपने पति और अपने कई समकालीन दोस्तों से मिल कर हंस सकें।

अपने जमाने की सबसे ज्यादा सफल और चर्चित अभिनेत्री ने जिस खामोशी से फिल्मों को अलविदा कहा, उसी खामोशी से वह दुनिया को भी अलविदा कह गईं। लेकिन आप यदि कभी साधना की ज़ुल्फ़ों के चाहने वाले रहे हों तो यह किताब आपके लिए है, यदि आप साधना की छरहरी काया और उनके सफेद लिबास में लिपटी सादगी के कायल रहे हों तो यह किताब आपके लिए है, यदि आप साधना की खूबसूरती, उनकी बोलती आँखें और शोख अदाओं के दीवाने रहे हों तो यह किताब आपके लिए है और यदि आप इनमें से कोई भी न हों तब भी यह किताब इस मायने में आपके लिए है कि यह एक बेहद चर्चित शख्सियत के फ़र्श से अर्श और पुनः अर्श से फ़र्श तक आ जाने की सच्ची कहानी है। साधना की ही फिल्म 'वक्त' के लिए साहिर ने लिखा था '*वक़्त है फूलों की सेज, वक़्त है काँटों का ताज*, और साधना की जिंदगी ने इस गाने को अक्षरशः सत्य किया। इसी गाने में साहिर ने यह भी लिखा '*आदमी को चाहिये, वक़्त से डर कर रहे। कौन जाने किस घड़ी, वक़्त का बदले मिजाज।*' साधना की जिंदगी से रूबरू होते हुए साहिर की ये नसीहत हर पाठक को बार-बार याद आती रहेगी। बोधि प्रकाशन और इस किताब के लेखक प्रबोध कुमार गोविल बधाई के पात्र हैं कि इन्होंने साधना के लाखों प्रशंसकों को उनके जीवन में झाँकने और उन्हें करीब से जानने का अवसर दिया। इस किताब की उपयोगिता लंबे समय तक बनी रहेगी।

---

**कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें**